आवरण पर आवरण

✻ ब्रह्माकुमारी उर्मिला, संयुक्त संपादिका

भारत की आजादी के आन्दोलन के दौरान एक बार महात्मा गांधी जी उड़ीसा के दौरे पर थे। वहाँ उन्हें एक महिला देखने में आई जिसके कपड़े बहुत मैले थे। बापू ने बा को उस महिला से मिलने और स्वच्छता का पाठ पढ़ाने के लिए भेजा। महिला ने अपनी समस्या बताई कि कपड़े बदलने के लिए दूसरे कपड़े हैं ही नहीं, स्वच्छता कैसे अपनाई जाए। बापू को जब यह समाचार दिया गया तो उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने उस समय प्रण किया, जब तक इस देश के हर नागरिक को आवश्यकतानुसार कपड़े नहीं मिल जाते, बापू भी न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति के लिए कपड़े पहनेंगे और उन्होंने इस प्रण को निभाया। जब एक बच्चे ने बापू को पत्र लिखा, बापू, मेरी माताजी कोट बहुत अच्छा सिलाई करती हैं, आपके पास सर्दी में पहनने के लिए कोई कोट नहीं है, आप कहें तो एक सिलवा दूँ। बापू ने उत्तर दिया था, मेरे 35 करोड़ भारतीय भाइयों में से प्रत्येक के लिए कोट उपलब्ध करवा सकते हो तो मैं भी पहन लूँगा।

वनमानुष संस्कृति

बापू और बापू के साथी, सहयोगियों के देशप्रेम, सादगी, अहिंसा, त्याग, दया, सत्य के बल से भारत आज़ाद हुआ, विकसित भी हुआ। आज देश में हर प्रकार का कपड़ा बनता है और निर्यात भी होता है परन्तु अफसोस की बात है कि हर शहर में सैकड़ों दुकानें कपड़े की होते भी हमारी माताओं, बहनों के कपड़े छोटे होते जा रहे हैं। इतिहास कहता है, सभ्यता के विकसित होने के कुछ समय पहले के दौर में मानव वनमानुष था। जंगलों में रहता था, कच्चा मांस खाता था, वृक्षों की छाल से जैसे-तैसे तन ढकता था। धीरे-धीरे हम सभ्य बने। हथकरघे से कपड़ा बुना जाने लगा और मानव तन ठीक से ढका जाने लगा। वनमानुष संस्कृति को पार कर सभ्य मानव बनने के सफर में अन्य बातों के साथ-साथ शालीन पोशाक की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज यदि हम शालीन पोशाक के मानदण्ड को भुलाकर कीटाणुओं और रोगों से भरी त्वचा के प्रदर्शन में मन-बुद्धि को लगा रहे हैं तो यह भी उसी वनमानुष संस्कृति की ओर लौटने का एक कदम ही जान पड़ रहा है।

वनमानुष ही क्यों? हमारे चारों तरफ घूमने वाले जानवरों में से कोई कपड़े नहीं पहनता। मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो प्रकृति ने उसे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ साधन भी उपलब्ध करवाए हैं ताकि वह उनका आनन्द ले। पर यदि हम प्राप्त साधनों की उपेक्षा कर, मानवीय मर्यादाओं की रेखा से बाहर निकलते हैं तो पशु संस्कृति की तरफ आकर्षित-से होते नज़र आते हैं।

या तो दब्बू या उच्छृंखल

थोड़े दिन पहले अखबार में एक लेख आया था, 'नज़र तेरी खराब और बुर्का मैं पहनूँ'। नारी को किसी की कुदृष्टि के कुठाराघात से बचाने के लिए समाज में पर्दाप्रथा चली। यह निश्चित रूप से उस पर अत्याचार था। उसके अधिकारों का हनन था। आज के जागरूक समाज में पर्दाप्रथा, कुछ ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर, लगभग समाप्त हो चुकी है। नारियाँ खुली हवा में सांस ले सकती हैं। और भी कई अधिकार जो काल प्रवाह में उससे छीन लिए गए थे, आज उसको प्राप्त हैं, यह खुशी की बात है। बीते काल में सामाजिक अंकुश लगे तो इतने कि हमें खुली हवा में सांस भी नहीं लेने दिया गया और सामाजिक अंकुश हटे तो हम इतने लापरवाह हो गए कि शालीन पोशाक की सीमा ही पार करने लगे। असन्तुलन की इन दोनों स्थितियों में हमारा आदर्श और सम्पूर्ण व्यक्तित्व तो निखर ही नहीं

पाया। पहली स्थिति में हम में अधीन रहने और दबने के संस्कार विकसित हुए और उस स्थिति से निपटते-निपटते इस युग में आए तो उच्छृंखल होने और शालीनता की मर्यादा लांघने के संस्कार बन गए, हम सन्तुलन में तो आ ही नहीं सके।

सूर्पनखा, भीलनी और सीता

रामायण में तीन नारी पात्र दिखाए गए हैं। सूर्पनखा, भीलनी और सीता। सूर्पनखा सर्व सामाजिक मर्यादाओं से मुक्त, मनमानी प्रकृति की है। सुन्दर पुरुष को देखते ही उसे काम का ज़हर चढ़ता नज़र आता है। मन को भा जाने वाले किसी भी नर के समक्ष अपनी कुटिल, काली, काम से रंगी भावनाएँ नि:संकोच व्यक्त कर देती है। परिवार की तरफ से भी उसे कोई बन्धन, रोक-टोक नहीं है। रामायण में श्रीराम ने सूर्पनखा के लिए कहा है, ''लज्जाविहीन नारी जब कामुक हो जाती है तो बहुत भयंकर हो जाती है।'' उसके लज्जाविहीन चाल-चलन पर रोक लगाने के बजाय उसका भाई रावण, श्रीराम पर ही क्रोधित होता है और बदला लेने की ठानता है। दूसरी पात्र हैं भीलनी जो राम-नाम रूपी पुष्प पर, मन रूपी भ्रमर के मंडराते हुए पूरा जीवन गुज़ारती है। राम की चहेती बनती हैं। पूर्ण आत्मिक जीवन जीती हैं। तीसरी पात्र हैं सीता जो भाग्य द्वारा सौंपी गई हर ऊँची से ऊँची नेमत से सुशोभित है। रूप, ऐश्वर्य, ऊँचा खान-दान सबके होते हुए भी आदर्श का नमूना हैं। सब कुछ प्राप्त होते हुए भी त्याग का साकार रूप हैं। बल के होते भी नम्रता की मूर्त हैं। सब प्रकार की स्वतन्त्रता होते भी शालीनता और मर्यादा का प्रत्यक्ष दर्शन हैं। प्रश्न यह है कि आज हम इन तीनों में से किसका अनुकरण करना चाह रहे हैं? यदि भीलनी की तरह जंगल में अकेले रह, भगवान के इन्तज़ार में जीवन खपा देना हमें वांछनीय नहीं है तो सूर्पनखा की तरह देह का जहाँ-तहाँ प्रदर्शन भी तो वांछनीय नहीं होना चाहिए।

मर्यादा रूपी किनारों के बीच बहें

हमारा आदर्श तो सीता है जिसमें भौतिक उपलब्धियों के साथ आध्यात्मिक गुणों का बराबर का समावेश है। यह है नारी का संतुलित जीवन। ना तो ज़बरदस्ती लादी गई साधना और ज़बरदस्ती पहनाई गई बेड़ियों की घुटन हो और न ही समाज की शालीनता और मर्यादा की धज्जियाँ उड़ा देने वाली उच्छृंखलता हो। जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है इसी तरह भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक किनारा, आध्यात्मिक शक्तियों की धारणा का दूसरा किनारा, इन दोनों के बीच जीवन बहे, यही सन्तुलन है, जीवन की सुन्दरता है।

एक बार किसी ने हमसे पूछा, आप प्रतिदिन सफेद कपड़े पहनते हैं, बोर नहीं होते क्या, हम तो एक ड्रेस को कुछ दिन पहनने के बाद उससे बोर हो जाते हैं, मन करता है, इसे फेंक दें। हमने कहा, यह बोर होने की आदत अच्छी नहीं है। इस आदत के कारण आज हम कपड़े से बोर हुए, कल किसी नज़दीकी रिश्ते से भी बोर हो गए, तब क्या करेंगे? क्या कपड़े की तरह उसे भी फेंक देने की नौबत आ जाएगी? और फिर सोचने की बात यह है कि हमारी कई आदतें तो जन्म से हमारे साथ हैं, क्या हम उनसे बोर हुए? उस आदत को जीवन से निकाल फेंकने का दृढ़ निश्चय किया क्या? उदाहरण के लिए ज़ोर से बोलना, किसी पर गुस्सा करना, मूड खराब करना, अनुमान लगाना, ईर्ष्या करना, परचिन्तन करना – इन्हें भी तो हम बरसों से लादे हुए हैं। हम कपड़ों से तो दो मास में बोर हो गए पर आदतों से तो कई वर्षों में भी बोर नहीं हुए।

अपनी जाति से डर

हम देखते हैं कि कोई जानवर अपनी जाति से नहीं डरता, दूसरी जाति वाले से डरता है। चूहा, चूहे से नहीं डरता, बिल्ली से डरता है। खरगोश, दूसरे खरगोश से नहीं, कुत्ते से डरता है। लेकिन मानव अपनी जाति से डरता है। नर और नारी एक-

दूसरे से डरते हैं। इस डर का कारण है दैहिक दृष्टि। जब तक एक-दूसरे को दैहिक नज़रों से देखते रहेंगे, यह डर खत्म नहीं होगा। देह दृष्टि अर्थात् स्वयं को देह मानना। पहले तो व्यक्ति को केवल देह रूपी कपड़े का अभिमान था पर अब तो इस कपड़े पर चढ़े कपड़ों का भी खूब अभिमान होने लगा है। मध्यमवर्गीय परिवारों में अक्सर कपड़ों को लेकर महाभारत मचता है। घर की महिला यदि नए कपड़े की मांग करती है तो उससे पूछा जाता है कि कुछ दिन पहले लाकर दिया था, वह कहाँ गया? क्या वह फट गया? यदि वह कहती है, वह तो पिछले उत्सव में पहन लिया था और सबने देख लिया था, इस उत्सव में पहनने के लिए नया कपड़ा चाहिए, तो दिखावे के लिए किए जाने वाले इस खर्च को परिवार सह नहीं पाता, फिर कलह होती है। उस कलह के बाद यदि वह कपड़ा मिल भी जाए तो उसे प्रयोग करते समय कलह की कहानी तो मन में घूमती ही रहती है। कहा-सुनी से सना हुआ वह कपड़ा मन को कितना सुकून देगा, यह सोचने की बात है।

सुख विचारों में है, आवरणों में नहीं

विडंबना यह है कि हम नए कपड़े का दिखावा करना चाहते हैं पर नए विचारों का नहीं। हम नए-नए रंग-बिरंगे कपड़ों में सुख खोजते हैं परन्तु नए-नए ऊँचे, पावन विचारों में नहीं। नए कपड़े के लिए हम कलह झेल लेते हैं पर नए विचार तो हम सुलह में भी नहीं अपनाना चाहते। क्या यह शरीर और मन इन नश्वर पदार्थों के पीछे लटकाने के लिए ही मिले हैं? क्या इन्हें नश्वर पदार्थों से हटाकर ऊँचे उद्देश्य में नियोजित करने का कोई लक्ष्य नहीं है? यदि विचारों से प्राप्त आनन्द को लेना सीख जाएँ तो कपड़ों से बोर होने के लिए समय ही नहीं बचेगा। कपड़े तन ढकने की आवश्यकता पूर्ति के लिए हैं, बोर होने या उनमें प्रसन्नता खोजने के लिए नहीं। अध्यात्म कहता है, शरीर आवरण है। इसे भूल अपने मूल स्वरूप में टिकिए। इस आवरण की रक्षा और शालीनता के लिए चढ़ाए जाने वाले अल्पकालीन आवरणों को इज़्जत, मान और शान प्राप्ति का साधन मत बनाइये। आवरण पर चढ़े आवरण अर्थात् दोहरे आवरणों की गिरफ्त में फँसे अपने असली स्वरूप को पहचानिए। आत्म साक्षात्कार और परमात्म साक्षात्कार कीजिए। ❖

दुआओं से अभिषेक

ब्रह्माकुमारी राजकुमारी, मजलिस पार्क, देहली

''ज्ञानामृत'' है ज्ञान के अमृत का समन्दर,
सद्ज्ञान, सद्विवेक का भण्डार इसके अन्दर,
परमात्म प्रत्यक्षता का होता प्रस्फुटित इससे स्वर,
आती नव चेतना, नवजागृति सबको अहर्निश निरन्तर,
सर्व की भावनाओं के प्रकटीकरण का आधार,
नवीन रचनाओं, अनुभवों को निष्पक्ष करता स्वीकार,
महान विभूतियों के जीवन का करता चरित्र आंकन (चरित्रांकन),
देख सकते अठारह ही विंग्स का इसमें सर्वोत्तम आकलन,
आध्यात्मिकता का अनुपम, अद्वितीय दर्पण है समाज को अर्पण,
उदाहरणों-उद्धरणों-दृष्टान्तों और वरदानों का वर्णन,
है समय की पुकार, हे ''ज्ञानामृत''! तुम जुग-जुग जीओ।
आज मनाएँ स्वर्ण जयन्ती, कल को हीरक भी हो!!
पत्र-पत्रिकाएँ हैं जगत में यूँ तो अनेकानेक,
करें वैचारिक सुपरिवर्तन, शुभ भावनाओं का अतिरेक।
है मुबारक तुम्हें, सुकामनाओं-दुआओं से है अभिषेक।।